ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-2*March- 2018
Innovation The Research Concept

# प्राचीन भारत में ग्राम पंचायतों की एतिहासिक पृष्ठभूमि का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

**बीरपाल सिंह ठैनुआं**
असिस्टेंट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
दयालबाग शिक्षण संस्थान,
(डीम्ड विश्वविद्यालय)
दयालबाग, आगरा

**दीपमाला श्रीवास्तव**
डीन,
कला विभाग,
समाज विज्ञान संस्थान,
डा0 भीमराव अम्बेदकर
विश्वविद्यालय,
आगरा

**हरेन्द्र कुमार**
प्राचार्य,
मा0 प्रताप सिंह वर्मा डिग्री
कॉलेज,
राया रोड सादाबाद,
हाथरस

**सारांश**

भारत में वैदिक युग से ही ग्रामों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। देष के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास के केन्द्र बिन्दु भी ग्राम ही रहे हैं। उद्योग धन्धों एवं परिवहन की सुविधाओं के विकास होने से पूर्व ग्रामीण लोगों की समस्त आवष्यकताओं की स्वतन्त्र इकाई ग्राम ही थे। राज्यों के विस्तार के साथ–साथ इनका महत्व भी अपनी पूर्ववतः स्थिति में ही बना रहा। प्राचीन काल से ही ग्राम पंचायतों का किसी न किसी रूप में अस्तित्व अवष्य रहा है। ग्रामीण प्रषासन, ग्रमीण विकास, षान्ति एवं न्याय व्यवस्था का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व ग्राम पंचायतों का ही था। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थों वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, मनुस्मृति आदि में किसी न किसी रूप में ग्राम पंचायत के दर्शन होते हैं। ग्रामों का प्रषासन इन्हीं ग्राम पंचायतों के नेतृत्व एवं निर्देषन में चलाया जाता था। वह ग्रामीण प्रषासन की धुरी एवं ग्रामीण संविधान का केन्द्र होती थीं। इन्हीं पंचायतों के कारण ग्रामीण जीवन हजारों वर्षों तक विभिन्न विदेशी आक्रमणों, युद्धों, विद्रोहों, संग्रामों तथा लडाइयों के पष्चात भी बिना किसी उथल–पुथल के व्यवस्थित बना रहा। ग्राम पंचायतों का भारतीय ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं में प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रमुख स्थान बना हुआ है।

**मुख्य शब्द :** वैदिक युग, मुखिया, ग्रामणी, वेद, परिषद, पंचायत, महाकाव्य, ग्रामाधिपति, मनुस्मृति, बीसग्रामाधिपति।

**प्रस्तावना**

प्राचीन काल से ही भारत में ग्रामों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। देष के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास के केन्द्र बिन्दु भी ग्राम ही रहे हैं। यही उद्योग धन्धों एवं परिवहन की सुविधाओं का विकास होने से पूर्व ग्रामीण लोगों की समस्त आवष्यकताओं की पूर्ति की स्वतन्त्र इकाई ग्राम थीं। राज्यों के विस्तार के साथ–साथ भी इनका महत्व अपनी पूर्ववतः स्थिति में ही बना रहा। भारतीय इतिहास अनेकों उथल–पुथल भरा इतिहास रहा है, लेकिन ग्राम और ग्राम पंचायतों के क्रिया–कलापों पर इन सबका कोई अधिक प्रभाव नहीं पडा। अनेकों युद्धों, लडाइयों, विदेशी आक्रमणों एवं आन्तरिक विद्रोहों के वावजूद भी ग्राम एवं ग्राम पंचायतों की कार्य प्रणाली व्यवस्थित रूप से कार्य करती रहीं तथा इन पर कोई विषेष प्रभाव नहीं पडा। भारत के संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि यदि भारतीय समाज को सम्पूर्ण रूप में समझना है तो यहां की ग्राम पंचायत, जाति व्यवस्था तथा संयुक्त परिवार को समझना होगा। जाति व्यवस्था और संयुक्त परिवार दौनों ही अपने परम्परागत प्रभाव को खोते जा रहे हैं, लेकिन ग्राम पंचायतें प्रचीन काल से लेकर आज तक केवल प्रभावषाली ही नहीं हैं बल्कि इनके प्रभाव में और अधिक वृद्धि हुई है। आज वे केवल ग्रामीण प्रषासन की धुरी एवं ग्रामीण संविधान का केन्द्र ही नहीं वल्कि ग्रामीण विकास का इंजन भी हैं। प्राचीन काल में ग्राम पंचायतों के आधार पर ही कई विदेशी इतिहासकारों ने भारतीय ग्रामों को लघु गणत्रंत तक की संज्ञा दे दी। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास में पंचायतें एक जैसी नहीं रहीं हैं वल्कि इस इतिहास के विभिन्न युगों में इनमें अनेक उतार–चढाव रहें हैं। इन उतार–चढावों का अनुभव एवं सामाना करती हुई ये पंचयाती राज व्यवस्था और अधिक परिपक्व एवं संस्थापित होती गयी।

**अध्ययन के उद्देश्य**

1. प्राचीन काल में ग्राम पंचायतों के उद्भव का अध्ययन करना।
2. प्राचीन काल में ग्राम पंचायतों की शक्तियों एवं कार्यों का अध्ययन करना।
3. प्राचीन काल में ग्राम पंचायतों की स्थिति का अध्ययन करना।

**वैदिक युग में पंचायत व्यवस्था**

भारत में वैदिक युग से ही ग्रामों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। देष के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास के केन्द्र बिन्दु भी ग्राम ही रहे हैं (अल्टेकर 1962)। राज्यों के विस्तार के साथ–साथ भी इनका महत्व अपनी पूर्ववतः स्थिति में ही बना रहा। चार्ल्स मेटकेफ ने प्राचीन भारतीय ग्रामों को लघु गणतंत्र कहा। उन्हीं के शब्दों में वे अन्त तक यथावत वने रहे। एक साम्राज्य के पष्चात दूसरा साम्राज्य बदलता रहा। .... वे अपनी अधिकतम आत्मनिर्भरता एवं स्वतन्त्रता का उपभोग करते रहे (मेटकेफ 1905)।

वेदों में ग्राम के मुखिया को ग्रामणी कहकर पुकारा गया है, तथा ग्राम का प्रषासन इसी के नेतृत्व एवं निर्देषन में चलाया जाता था (ऋग्वेद)। वह ग्रामीण प्रषासन की धुरी एवं ग्रामीण संविधान का केन्द्र था (जयसवाल 1955)। ग्रामणी की नियुक्ति अथवा निर्वाचन के विषय में वेदों में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं बतलाया गया है तथा इस सम्बन्ध में विचारक भी एक मत नहीं है। अल्टेकर का विचार है कि ग्रामणी का पद वंषानुगत था, लेकिन विषेष परिस्थितियों में राजा उसी परिवार के किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर सकता था (अल्टेकर 1962)। वी.एम. आप्टे का मत है कि यह निष्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि ग्रामणी का पद वंषानुगत था अथवा राजा द्वारा उसकी नियुक्ति की जाती थी या ग्राम परिषद द्वारा उसका निर्वाचन किया जाता था (आप्टे 1939)। ग्रामणी अधिकतर क्षत्रिय वर्ण का ही होता था, लेकिन आवष्यकता पड़ने पर वैष्य के व्यक्ति की नियुक्ति भी इस पद पर की जा सकती थी। उसे अपने पारिश्रमिक के रूप में कर मुक्त जमीन दी जाती थी, और इसके अतिरिक्त अनाज आदि के रूप में उगाहे जाने वाले करों से राजा द्वारा उसे सहायता भी प्रदान की जाती थी (अल्टेकर 1962)।

ग्रामणी के अधिकार एवं कर्तव्यों के विषय में प्राप्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि वह ग्राम की आन्तरिक एवं बाहरी सुरक्षा व शांति व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था, तथा ग्राम या सेना का नेतृत्व करना भी उसी का कार्य था। ग्रामणी के माध्यम से ही राजा का सम्बन्ध ग्रामों से जुड़ता था, तथा राज्य के कानूनों को ग्राम में कार्यान्वित करना उसी का कार्य था। ग्राम के झगड़ों का निर्णय करना भी उसी का उत्तरदायित्व था। उस युग में राज्य–षासन में ग्रामणी का महत्वपूर्ण स्थान था तथा उसकी गिनती राजा के मंत्रियों में की जाती थी (ऋग्वेद)। वेदों में इस विषय में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलते हैं कि ग्रामणी अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह स्वयं करता था अथवा उसकी सहायता के लिए कोई सभा अथवा परिषद होती थी। विद्वानों ने इस विषय में भिन्न–भिन्न मत व्यक्त किये हैं।

डॉ0 काषीप्रसाद जायसवाल का विचार है कि वैदिक युग में राष्ट्रीय जीवन एवं कार्य–कलापों के दर्शन सार्वजनिक सभा एवं समितियों के क्रिया–कलापों में ही होते थे (जयसवाल 1955)। उन्होंने ग्रामीण स्तर की सभा एवं समितियों का वर्णन नहीं किया है। लेकिन वे इतना तो स्वीकार करते हैं कि राजा की सभा एवं समितियों पर बाद में चल कर ग्रामीण संगठनों का प्रभाव अवष्य पड़ा था। डॉ0 अल्टेकर का इस सम्बन्ध में स्पष्ट मत है कि वैदिक युग में सभा एवं समिति दो संस्थाएँ विद्यमान थीं तथा उस समय में सभी राज्यों में लोक–सभाएँ होती थी जो राजाओं पर नियंत्रण स्थापित करती थी। वैदिक कालीन औसत राज्य यूनान के नगर राज्यों की भाँति विस्तार में कुछ वर्गमील से अधिक नहीं थे तथा इनकी राजधानी इनमें अन्तर्भूत ग्रामों से विषेष बड़ी नहीं होती थी। प्रत्येक ग्राम में जनता की सभा होती थी और राजधानी में सम्पूर्ण राज्य की केन्द्रीय लोकसभा होती थी जिसको समिति कहते थे। उन्हीं का आगे कहना है कि ग्राम का मुखिया ग्रामणी होता था लेकिन फिर भी ग्राम के वृद्धों की राय से कार्य करना होता था। वैदिक युग की सभा ग्राम पंचायत या परिषद् के साथ–साथ सामाजिक गोष्ठी का भी कार्य करती थी। इस प्रकार ग्राम व्यवस्था ग्राम वाले स्वयं ही करते थे (अल्टेकर 1962)।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामणी के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने हेतु वैदिक युग में ग्राम स्तर पर कोई सभा या परिषद् अथवा पंचायत अवष्य ही होती होगी और उसका प्रमुख कार्य ग्रामणी के कार्यों में सहयोग प्रदान करना ही होगा। इस सभा या पंचायत के गठन के विषय में स्पष्ट संकेत न मिलने के कारण यह कहा जा सकता है कि या तो ग्राम के वृद्ध इसके सदस्य होते होगें अथवा इसके सदस्यों का ग्रामीणों द्वारा निर्वाचन किया जाता होगा अथवा विभिन्न परिवारों से अनुभव प्राप्त व्यक्तियों को इसके लिए राजा द्वारा ग्रामणी की सलाह से मनोनीत किया जाता होगा।

**महाकाव्य काल में पंचायत व्यवस्था**

रामायण एवं महाभारत काल में ग्रामीण प्रषासन का विस्तृत विवरण प्राप्त न होकर संक्षिप्त रूप में ही उपलब्ध है। प्राचीनयुग से चली आ रही ग्रामीण व्यवस्था इस युग में भी विद्यमान है (गुप्ता 1968)। प्रषासन का आधार ग्राम ही था जिसे घोष एवं ग्राम के नाम से पुकारा जाता था (खन्ना 1967)। घोष एवं ग्राम के मुखिया को घोष महत्तारा, ग्राम महत्तारा या ग्रामणी के नाम से सम्बोधित किया जाता था (रामायण)। ग्रामीणों की समस्याओं का समाधान प्राचीन परम्पराओं एवं रीतिरिवाजों के आधार पर स्वयं ग्रामीण जनता एवं मुखिया द्वारा किया जाता था (दत्त 1963)। ग्रामणी का ग्राम में महत्वपूर्ण स्थान होने के साथ–साथ राजा के दरवारियों में भी प्रमुख स्थान था (पाण्डे)। ग्राम के मुखिया की सहायता हेतु ग्रामों में सभा एवं परिषदें थीं जिनके सदस्य संभवतः या तो ग्राम के वृद्ध या ग्राम के परिवारों के प्रतिनिधि होते थे। प्रषासन की सुविधा को ध्यान में रखकर कई ग्रामों को मिलाकर कई इकाईयाँ गठित की जाती थी जैसे– दस ग्राम, बीस ग्राम, सौ ग्राम एवं एक हजार ग्राम। इन इकाईयों के अध्यक्षों को क्रमषः दस ग्रामाधिपति, बीसाधिपति, ग्रामषताध्यक्ष एवं सहस्त्रग्रामाधिपति के नामों से पुकारा जाता था। इनके कार्यों के विषय में केवल इतना बतलाया गया है कि वे ग्रामों की देखभाल करेंगे और अपने ऊँचे ग्रामाधिपति को अपनी समस्याओं के विषय में रिपोर्ट प्रस्तुत करेगें। ग्रामणी के कार्यों में सहायता देने के लिए

ग्राम परिषद् होती थी जिसके संभवतः पाँच सदस्य होते थे (रॉय 1975)।

सदस्यों के निर्वाचन एवं नियुक्ति तथा कार्यकाल के विषय में महाभारत में कुछ नहीं बतलाया गया है। लेकिन ग्राम परिषद के सदस्य वीर, बुद्धिमान, पवित्र विचार वाले एवं चरित्रवान व्यक्ति ही होते थे। ग्राम परिषद् अपने कार्यों में आन्तरिक रूप से स्वतंत्र थी लेकिन बाहरी रूप से शासन का उन पर नियंत्रण रहता था।

**स्मृति काल में पंचायत व्यवस्था**

महाकाव्य युग की भाँति ही मनुस्मृति में भी प्रषासन का आधार ग्राम ही था जिसका मुखिया ग्रामाधिपति कहलाता था तथा ग्रामाधिपति की नियुक्ति राजा द्वारा ही की जाती थी। लेकिन एक बार नियुक्ति के पष्चात् यह पद वंषानुगत आधार पर चलता था। मनु ने यद्यपि ग्रामीण प्रषासन का स्पष्ट एवं विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया है लेकिन मनुस्मृति में वर्णित कानूनों एवं न्यायिक परम्पराओं से ग्रामीण प्रषासन की जानकारी प्राप्त होती है। व्हीलर का मत है कि इस युग में ग्राम स्वषासित इकाईयाँ जैसे थे जिनका प्रषासन ग्राम के मुखिया द्वारा चलाया जाता था तथा उसकी सहायता हेतु चौकीदार एवं लिपिक होता था (व्हीलर 1961)। मुखिया ग्रामीण प्रषासन को चलाते समय जनमत का ध्यान रखता था और जनमत का ज्ञान ग्रामीण जनता के एक स्थान पर एकत्रित कर किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि उस युग में सम्पूर्ण ग्राम प्राचीन व्यवस्था के अनुसार ही ग्राम की सभा का कार्य करता था।

ग्रामों में लगान वसूल करना, झगड़ों एवं अपराधों का निर्णय करना तथा ग्राम की आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार से रक्षा करना ग्रामाधिपति का मुख्य कार्य था (मनुस्मृति)। सामाजिक विषयों का निर्णय ग्राम–सभा में पूर्ण विचार विमर्ष के पष्चात् किया जाता था। ग्राम और राज्य के बीच किये गये समझौतों का उल्लंघन करने वालों को भी राजा द्वारा दंड दिया जाता था। ग्रामीण रीतिरिवाजों एवं नियमों का उस युग में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि यदि कोई ग्राम समुदाय के समझौतों का उल्लंधन करता था तो उसे राजा द्वारा राज्य से बाहर निकाल दिया जाता था (अल्टेकर 1962)। ग्राम के मुखिया एवं अन्य कर्मचारियों के पास कर मुक्त जमीन होती थी लेकिन फिर भी राज्य द्वारा उन्हें समय–समय पर आर्थिक, सहायता प्रदान की जाती थी (व्हीलर 1961)।

प्रषासन की सुविधा हेतु ग्रामों की इकाईयों का गठन किया जाता था। एक ग्राम के ऊपर दस ग्रामों का और 20 ग्रामों का तथा इसी प्रकार से अन्य ऊपर की इकाई गठित की जाती थी तथा इनके अध्यक्षों को दस ग्रामाधिपति, बीसग्रामाधिपति आदि नामों से पुकारा जाता था (चौधरी 1971)। यदि किसी ग्राम में किसी विषय से सम्बन्धित किसी झगड़े का निर्णय नहीं होता था तो उसे दस ग्रामों के अध्यक्षों को इसकी सूचना देनी होती थी और दस ग्राम के पष्चात् भी यदि झगड़े का निर्णय न हो तो उसकी सूचना बीस ग्रामाधिपति को दी जाती थी तथा इसी प्रकार से कोई भी विवादास्पद मामला ऊपर तक बढ़ता जाता था। मनु ने ग्रामीण प्रषासन को सुचारू रूप से चलाने के उद्देष्य से ग्रामाधिपतियों पर नियंत्रण रखने की व्यवस्था भी की थी। राजा द्वारा एक जनहितैषी मंत्री की नियुक्ति की जाती थी जो भी सभी ग्रामाधिपति के कार्यों की देख–रेख करता था। मनु ने ग्रामीण प्रषासन ग्रामीणों द्वारा चलाते हुए भी इस पर राजा के नियंत्रण की व्यवस्था की थी। ग्रामीण प्रषासन बाह्य रूप से नियंत्रित था लेकिन आन्तरिक रूप से स्वतन्त्र था।

**बौद्धकाल एवं जैन युग में पंचायत व्यवस्था**

बौद्धकाल एवं जैन धर्म काल में एक राजनीतिक इकाई के नाते प्रषासन का केन्द्र तथा आधार ग्राम ही थे। ग्राम के लोग ग्राम के कार्यों को स्वयं करते थे। ग्राम प्रषासन को चलाने के लिए ग्राम का मुखिया ग्राम भोजक या ग्रामणी होता था। जो वंषानुगत आधार पर नियुक्त किया जाता था तथा कभी–कभी ग्राम परिषद् द्वारा भी निर्वाचित किया जाता था। ग्राम के मुखिया की सहायतार्थ एक मुनीम की व्यवस्था थी जो ग्राम के कार्यों आदि का लेखा–जोखा तैयार करता था। मुखिया को पारिश्रमिक के रूप में आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी।

बौद्धकालीन युग में मुखिया की सहायतार्थ ग्रामों में ग्राम सभा एवं ग्राम परिषद् होती थी। ग्राम सभा एवं ग्राम परिषद् के गठन के विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है लेकिन ऐसा अनुमान है कि प्राचीन परम्परा के अनुसार ही ग्राम सभा के सदस्य ग्राम के सम्पूर्ण निवासी तथा ग्राम परिषद् के सदस्य ग्रामवृद्ध एवं अनुभव प्राप्त व्यक्ति ही होते थे। ग्राम का मुखिया ग्राम की बाहरी एवं आन्तरिक सुरक्षा तथा राजस्व वसूली ग्रामीणों की सहायता से करता था तथा उसके लिए वह उत्तरदायी भी था। मुखिया का स्थान ग्रामीण प्रषासन में महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ राजा की सभा में भी महत्वपूर्ण था। बिम्बसार ने अपनी सभा में 80,000 ग्रामणियों को आमंत्रित किया था (मुकर्जी)। ग्रामीण समस्याओं का समाधान ग्रामीण स्वषासन की इकाईयों में पूर्ण विचार विमर्ष के बाद किया जाता था इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक ग्राम अपने में पूर्ण स्वतन्त्र गणराज्य जैसा ही था।

उपर्युक्त कथन से यह तो स्पष्ट है कि ग्रामीण प्रषासन का संचालन ग्राम के निवासियों अथवा ग्राम की सभा की सहायता से ही होता था किन्तु उस सभा, संगठन तथा कार्यों का निष्चित लेखा–जोखा पूर्ण रूप से उपलब्ध नही है। परिवर्ती युग में भी कोटिल्य के अर्थशास्त्र में इस विषय पर अधिक प्रकाष नहीं डाला गया है किन्तु मौर्यकालीन प्रषसन, न्याय व्यवस्था एवं अन्य स्रोतों के आधार पर कहा जा सकता है कि ग्राम के लोगों के सहयोग से ग्रामीण प्रषासन को चलाने की प्राचीन परम्परा इस युग में और भी मजबूत हो गयी थी। जिससे प्राचीन परम्परा से इस युग में और सुधार हो गया था।

**मौर्यकालीन पंचायत व्यवस्था**

मौर्यकालीन साम्राज्य के समय में शासन केन्द्रित होते हुए भी स्थानीय प्रषासन हेतु विकेन्द्रीकरण की नीति को अपनाया गया था। इस युग में भी प्रषासन की आधारभूत इकाई ग्राम ही था जिसका मुखिया ग्रामणी कहलाता था और ग्राम का मुखिया ग्रामणी और दस ग्रामों का दासी, बीस ग्रामों का बीसाती, सौ ग्रामों का शत ग्रामाधिपति तथा इनके ऊपर सहस्र ग्रामाधिपति हुआ करता था तथा इनकी नियुक्ति राजा द्वारा होती थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि

चाणक्य ने ग्रामों के प्रषासन का गठन मनु द्वारा बतलाये गये ग्रामीण प्रषासन जैसा ही बतलाया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ग्रामीण संस्थाओं का स्पष्ट विवरण नहीं दिया गया है लेकिन उपलब्ध साहित्य एवं अन्य सामग्री के आधार पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि ग्राम के मुखिया की सहायतार्थ उस युग में ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायते करती थीं। ग्राम सभा के सदस्य ग्राम के सम्पूर्ण निवासी एवं ग्राम पंचायत या ग्राम परिषद् के सदस्य पूर्णतय ग्राम के वृद्ध हुआ करते थे, और ग्राम सभा एवं परिषद् का अध्यक्ष ग्राम का मुखिया ग्रामणी ही हुआ करता था।

प्रत्येक ग्राम के प्रषासन हेतु नियमों व कानूनों का निर्माण ग्राम सभा द्वारा होता था। ग्राम के सभी आपसी झगड़ों का निर्णय, ग्रामीण निवासियों के आमोद–प्रमोद के साधनों की व्यवस्था, सार्वजनिक हित के कार्य, नावालिगों की सम्पत्ति की रक्षा, राजस्व वसूली आन्तरिक व बाहरी शांति व्यवस्था एवं रक्षा ग्राम का मुखिया ग्रामणी, ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत की सहयोग से किया करता था। इस प्रकार मौर्यकालीन भारत में ग्रामीण प्रषासन ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत की सहायता से ग्राम के मुखिया ग्रामणी के नियंत्रण एवं निर्देषन में चलाया जाता था। एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठकर ग्राम की व्यवस्था हेतु ग्राम सभा अपनी बैठक किया करती थी। जिसमें परिवारों के प्रतिनिधि, ग्राम के सभी वृद्धजन, अनुभव प्राप्त व्यक्ति विभिन्न विषयों पर पूर्णरूप से विचार विमर्ष किया करते थे। उस बैठक की कार्यवाही सभा द्वारा निष्चित की जाती थी। इस प्रकार उस प्राचीन समय के भारत में ग्राम स्वषासित छोटे–छोटे गण राज्य के रूप में थे।

**शुक्रनीति पंचायत व्यवस्था**

शुक्रनीति में ग्रामीण प्रषासन का अपेक्षाकृत विस्तार पूर्वक विवरण प्राप्त है। प्रषासन की आधारभूत इकाई ग्राम थे जो स्वषासित इकाई के रूप में कार्य करते थे (षुक्रनीति)। ग्राम के मुख्य चार अधिकारी होते थे– 1. ग्राम का मुख्य प्रषासकीय अधिकारी हुआ करता था। 2. ग्रामीण न्यायालय का उच्चाधिकारी हुआ करता था। 3. कर बसूल आदि बसूल करने वाला अधिकारी हुआ करता था। 4. ग्रामीण लेखा–जोखा करने वाला होता था। इन अधिकारियों की नियुक्ति जनता की सलाह से राजा द्वारा की जाती थी। मुखिया ग्राम का सबसे प्रभावषाली व्यक्ति हुआ करता था तथा वह ग्राम जनता के लिए माता–पिता के समान होता था। वह शासन के प्रति उत्तरदायी होते हुए भी जनता का आदमी था तथा उसे पारिश्रमिक के रूप में कर मुक्त जमीन दी जाती थी।

अपने ग्राम में मुखिया की सहायता हेतु ग्राम परिषद् अथवा पंचायत होती थी और उसे ग्रामीण प्रषासन एवं न्यायिक क्षेत्र में पूर्ण शक्ति प्राप्त थी। परिषद् एवं पंचायतों के सदस्यों का शासन द्वारा पूर्ण सम्मान किया जाता था। ग्राम परिषद् एवं ग्राम पंचायत के गठन के विषय में शुक्रनीति में विवरण प्राप्त नहीं होता है लेकिन ऐसा अनुमान है कि प्राचीन परम्परा के अनुसार ही इनके सदस्य ग्राम के वृद्ध तथा ग्राम के अन्य अनुभव प्राप्त व्यक्ति हुआ करते होगें। भूमि का वितरण, राजस्व वसूली एवं उसे खजाने में जमा करने का कार्य ग्राम पंचायत एवं परिषद् का मुख्य कार्य था। इसके अतिरिक्त ग्रामीण जनता की आन्तरिक एवं बाहरी संकटों से रक्षा करना भी मुखिया एवं ग्राम परिषद् का ही उत्तरदायित्व हुआ करता था।

**गुप्त कालीन पंचायत व्यवस्था**

गुप्त कालीन शासन व्यवस्था में पंचायतों के नाम में परिवर्तन किये गये, इसके अन्तर्गत विषय अथवा जिला ग्रामों में विभाजित किया गया तथा ग्राम प्रषासन का लघुत्तम केन्द्र हुआ करता था (षर्मा )। ग्रामीण प्रषासन हेतु प्रत्येक ग्राम में एक मुखिया होता था जिसे ग्रामिक, ग्रामपति, ग्राममहत्तर अथवा ग्रामयक आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता था (उपाध्याय)। मुखिया की सहायता हेतु ग्रामों में ग्राम परिषद्, ग्राम सभा, ग्राम पंचायत व पंचमंडली अथवा ग्राम जनपद होती थी, जो ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संस्थाऐं कहलाती थी। पंचायत एवं परिषद् के सदस्य ग्राम के वृद्ध एवं ग्राम के अनुभवी लोग विषेष महत्व रखते थे। कहीं–कहीं पर ग्राम सभा के सदस्यों को महत्तर अष्ट कुपाधिपति (आठ कुलों का मुखिया), ग्रामिक (ग्राम के प्रधान व्यक्ति) एवं कुटम्बिन (परिवार के मुख्य व्यक्ति) आदि के नामों से पुकारा जाता था। ग्राम सभा के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत ग्रामीण प्रषासन एवं सार्जजनिक उपयोग के कार्यों के साथ–साथ ग्रामीण सुरक्षा, ग्रामीण झगड़ों का निर्णय, राजस्व वसूली, सिंचाई एवं परिवहन की व्यवस्था एवं प्रबन्ध करना था। इस काल में पंचायत का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण था। ग्राम की भूमि तथा अन्य चल व अचल सम्पत्ति ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत की स्वीकृति से ही बेची अथवा दान की जा सकती थी। स्वयं चन्द्रगुप्त द्वितीय के सेनापति अम्रकादेव को एक ग्राम का दान करने के लिए ग्राम पंचायत की अनुमति लेनी पड़ी थी।

ग्रामीण कार्यों को सम्पन्न करने हेतु ग्राम सभा एवं ग्राम पंचायत के अन्तर्गत समिति व्यवस्था पायी जाती थी। ग्राम सभा कृति, उद्यान, सिंचाई एवं मन्दिर आदि की व्यवस्था हेतु उपसमितियों का गठन करती थी जोकि ग्राम पंचायतों को कार्यों में सहायता पहुँचाती थी (अल्टेकर 1962)। यहाँ पर दृष्टव्य है कि भारत में वर्तमान पंचायतों की समिति व्यवस्था का जन्म एवं विकास गुप्त कालीन भारत में हो चुका था। इस युग में ग्रामों के अन्तर्गत राजनीति चेतना स्वयं ग्राम संस्थाओं से प्राप्त होती थी। वे ही ग्राम की शक्ति का स्रोत थी और राजा की निरंकुषता पर नियंत्रण रखने के लिए तथा एक दृढ़ एवं स्वस्थ लोकमत का निर्माण करने के लिए उत्तरदायी थी। स्वतन्त्रता उनमें निहित थी और वे पूर्ण स्वतंत्रता के साथ कार्य करती थी। इन्हीं सब कारणों से भारत का प्रत्येक ग्राम एक छोटा सा जनतंत्र राज्य बन गया था और उसकी पंचायत उस जनतंत्र की शासक थी (कपूर 1958)।

**निष्कर्ष**

उपर्युक्त विष्लेषण के आधार पर कह सकते हैं कि प्राचीन काल में पंचायतों के इतिहास में अनेक उतार चढाव आये। वैदिक काल को जहां पंचायतों का उद्भव एवं शैषव माना जाता है वहीं गुप्त काल में पंचायतें अपने

चरम पर थीं। पंचायती राज व्यवस्था की प्राचीन भारत में एक विकसित पद्धति थी। आम सहमति से चयनित सभा अथवा समितियां ही ग्राम प्रषासन के सारे कार्यों को करती थी। केन्द्रीय सरकार पंचायतों के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करती थीं। पंचायतों पूर्ण रूप से ग्रामीण विषयों में स्वायत्ता प्राप्त थी। ग्रामीण समाज एक व्यवस्थित, शान्तिपूर्ण एवं खुषहाल स्थिति में था।

अतः प्राचीन भारत की ग्रामीण पंचायत व्यवस्था के विषय में यह कहा जा सकता है कि वैदिक युग से ही एक राजनीतिक इकाई के रूप में प्रषासन का केन्द्र एवं आधार ग्राम ही थे ग्रामणी प्रषासन, आन्तरिक व बाह्य शांति व्यवस्था, झगड़ों का निर्णय तथा सरकारी कर व लगान आदि की वसूली ग्राम का मुखिया ग्रामीणों की सहायता एवं सहयोग से किया करता था। ग्रामों में मुखिया की सहायतार्थ ग्राम सभा व परिषद् जैसे संस्थाऐं थीं, जिनके सदस्य ग्राम के वयोवृद्ध निवासी होते थे।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1. *Altekar, A.S. (1962). State and Governent in Ancient India. Delhi: Motilal Banrasidas.*
2. *Apte .V.M. (1973). The Vedic Age: Bhartiya Itihas Samiti. Quoted in B. L. Tak. Sociological Dimensions of Gram Raj. Ghaziabad: Vimal Prakashan.*
3. *Dutt, R. C. (1963). Early Hindu Civilization. Calcutta: Punthi Prakashan.*
4. *Gupta, B. B. (1968). Local Government in India. Allahabad: Central Book Depot.*
5. *Jayaswal, K.P. (1955). Hindu Polity: A Constitutional History of India in Hindu Times. Banglore: Prnting and Publication.*
6. *Khanna, R.L. (1967). Panchayati Raj in Punjab. Chandigarh: Mohindra Capital.*
7. *Majumdar, R.C. (1969). Corporate Life in Ancien India. Calcutta: S N Sen.*
8. *Metcalfe, C. quoted in Elphinstone's History of India. (1905). London: Joha Murry*
9. *Mukerjee, R.K. ( ). Hindu Civilization.*
10. *Manusmriti. VII. 116-117*
11. *Rigveda. 10,621,11*
12. *Roy, B.P. (1975). Political Ideas and Institutions in the Mahabharat. Calcutta: Punthi Prakashan.*
13. *Sharma, S. (1994). Grass Root Politics and Panchayati Raj. New Delhi: Deep & Deep Publication.*
14. *Shukraniti. II- 120, 343,344.*
15. *Upadhyaya, V.S. (?). Gupta Samrajya Ka Itihas. Part II. Allahabad: India Press.*
16. *Valmiki Ramayan. Ayodhya Kand Slok 15. Gorakhpur: Geeta Press.*
17. *Wheeler, R.C. (1961). Ancient and Hindu India (The Brahmanic Period). Calcutta: Punthi Prakashan.*